श्रीप्रयागदासजी, दादूपंथ के एक महत्त्वपूर्ण निर्गुण-कवि हैं। इनकी अपेक्षाकृत छोटी लेकिन सुंदर अनुभव-वाणी अब विस्तृत विवेचन व अनुवाद सहित पाठकगण के सामने प्रस्तुत की जा रही है। मेरे लिए यह विशेष आनंद का विषय है कि इस महत्त्वपूर्ण पुस्तिका के बारे में दो शब्द लिख रहा हूँ। जिस बारीकी व विस्तार से संपादक श्रीब्रजेंद्रकुमार सिंहल ने भूमिका लिखी है और जिस मार्मिकता से छंदों का अनुवाद व व्याख्या की हैं, उससे संपादक का इस क्षेत्र का विशाल ज्ञान और संत-साहित्य के प्रति गहरी पैठ ज्ञात होती है। आजकल इस तरह की विद्वत्ता का क्षरण तीव्रता से होता जा रहा है।

भूमिका में संपादक श्रीप्रयागदासजी की जीवनी के आधारभूत स्रोतों पर विचार करते हैं, जिससे मालूम पड़ता है कि संतवृत्ति की तीन रचनाओं और एक पुराने पत्र में श्रीप्रयागदासजी के बारे में जानकारी अपलब्ध है। संतवृत्ति की तीन रचनाएँ जनगोपाल की 'दादूजन्मलीला-परचई', माधवदास कृत 'संत-गुण-सागर' तथा राघवदास कृत 'भक्तमाल' हैं। इनसे भी अधिक उपयोगी स्रोत सुंदरदासजी के अस्थल से मिला एक पत्र है जो जीवनी-संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारियों का खजाना है। इस पत्र में कई संतों के संबंध में कहा गया है कि कौन कब शिष्य बना और कब उसकी समाधि बनी। बाकी स्रोतों में आपस में कहीं-कहीं विरोध भी है जिनका संपादक ने विस्तार से विवेचन कर उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। भूमिकाकार ने यह बताया है कि 'संत-गुण-सागर' सबसे कम विश्वसनीय स्रोत है जबकि 'दादूजन्मलीला-परचई' तत्कालीन स्रोत होने से सर्वाधिक प्रामाणिक है हालाँकि इसमें हुए प्रक्षेपों के संबंध में भी सावधानी बरतनी चाहिए। वास्तव में संतवृत्तियाँ आमतौर पर लेखकों द्वारा संप्रदायों के दृष्टिकोण से लिखी जाती थीं और कभी-कभी तथ्यों को भी परिवर्तित कर दिया जाता था। इस विषय में उल्लेखनीय बात है कि कुछ विद्वान राघवदास कृत 'भक्तमाल' के श्रीप्रयागदासजी और श्रीहरीदासजी से संबंधित छप्पय पर भी शंका प्रकट करते हैं। अमरीकी विद्वान टाइलर विलयम्स के अनुसार 'भक्तमाल' का श्रीहरीदासजी से संबंधित द्वितीय छप्पय क्षेपक है जो इस रचना की संवत् 1861 की प्रति में नहीं है जबकि संवत् 1886 की प्रति में मिलता है। विलयम्स का कहना है कि राघवदास ने द्वादश निरंजनी-महंतों का वर्णन एक ही छंद में किया है जबकि हरीदासजी नामक महंत का दो छंदों में जो असंतुलित सा लगता है। जिन घटनाओं का उल्लेख इस द्वितीय छप्पय में मिलता है वे सिर्फ अठारहवीं सदी की रचनाओं में मिलते हैं (Williams: Sacred Sounds, Sacred Books, पृ. 161-2, http://academiccommons.columbia.edu/catalog/ac%3A176988)। यहाँ यह

स्पष्ट करना आवश्यक है कि श्रीप्रयागदासजी, श्रीहरीदासजी के गुरु थे या नहीं, इससे उनकी अनुभववाणी का महत्त्व न बढ़ता और न घटता है लेकिन उपर्युक्त छप्पय से स्पष्ट है कि परवर्ती परंपरा ने श्रीप्रयागदासजी को महत्त्वापूर्ण स्थान दिया है।

श्रीप्रयागदासजी, दादूपंथ के प्राचीनतम वाणीकारों में से एक हैं। उनकी वाणी, दादूवाणी की तरह अंगबद्ध नहीं है। पदों में भी पुराने निर्गुण-संतों की तरह अधिकतर उन्होंने चौपाई (1, 2, 4, 5, 7, 9, 10, 11, 22, 23), सार (3, 6, 8, 15) तथा दोहा (16, 17, 21) छंदों का इस्तेमाल किया है।

श्रीप्रयागदासजी, महेश्वरी बियानी वैश्य-समुदाय के भी अच्छे प्रतिनिधि हैं। बियानी वैश्य दादू तथा निरंजनी दोनों पंथों से निकट का संबंध रखते हैं और इन संप्रदायों की तरह श्रीदादूदयालजी के समय से भक्ति-साधना, लेखन तथा किताबों का महत्त्व पहचानते हैं। श्रीप्रयागदासजी की अनुभववाणी में भी पोथी के महत्त्व के बारे में "पोथी मेरे प्रान है..." वाले चार दोहे (44-47) मिलते हैं।

साखियों व पदों में अन्य निर्गुण-संतों की तरह श्रीप्रयागदासजी सतगुरु-महिमा, नाम-स्मरण और अंतर्मुख होने पर विशेष ध्यान देते हैं। हालाँकि प्रयागदासजी गृहस्थ संत थे तथापि उनकी वाणी में सामाजिक-जीवन व भक्ति के विरह-पक्ष की तरफ अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है। उनकी दृष्टि के केंद्र में आध्यात्मिक-परिचय, आत्मा और परमात्मा की एकता है।

इस पुस्तक में श्रीप्रयागदासजी की अनुभववाणी एक हस्तलिखित तथा एक मुद्रित स्रोत से संपादित कर पाठकों के सामने आधुनिक हिन्दी अनुवाद सहित प्रस्तुत की जा रही है। वाणी को समझने के लिए हर छंद में आने वाले विशेष अर्थ में प्रयुक्त शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या भी मिलती है।

संपादक श्रीब्रजेंद्रकुमार सिंहल ने इस पुस्तक में भी निर्गुण-भक्ति की एक और महत्त्वपूर्ण वाणी पर ऐसा प्रकाश डाला है कि पाठक मूलवाणी को पढ़ने का आनंद प्राप्त करता है। मुझे आशा है, श्रीब्रजेंद्रकुमार सिंहल द्वारा अति सुंदर रूप में संपादित इस नयी पुस्तक को पाठक पसंद करेंगे।

डॉ० इमरै बंघॉ
हिन्दी प्रवक्ता
प्राच्यविद्याऑक्स्फ़ोर्ड विश्वविद्यालय ,प्रतिष्ठान-
संयुक्त राजशाही (यूनाइटेड किंगडम)